Chapter तैंतीस

कपिल के कार्यकलाप

मैत्रेय उवाच
एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; एवम्—इस प्रकार; निशम्य—सुनकर; कपिलस्य—कपिल के; वचः—शब्द; जनित्री—माता; सा—वह; कर्दमस्य—कर्दम मुनि की; दयिता—प्रिय पत्नी; किल—नामक; देवहूतिः—देवहूति; विस्रस्त—से युक्त होकर; मोह-पटला—मोह का आवरण; तम्—उसको; अभिप्रणम्य—नमस्कार करके; तुष्टाव—स्तुति की; तत्त्व—मूल सिद्धान्त; विषय—के सम्बन्ध में; अङ्कित—रचियता, प्रतिपादक; सिद्धि—मुक्ति की; भूमिम्—पृष्ठभूमि।

श्री मैत्रेय ने कहा : इस प्रकार भगवान् कपिल की माता एवं कर्दम मुनि की पत्नी देवहूति भक्तियोग तथा दिव्य ज्ञान सम्बन्धी समस्त अविद्या से मुक्त हो गईं। उन्होंने उन भगवान् को नमस्कार किया जो मुक्ति की पृष्ठभूमि सांख्य दर्शन के प्रतिपादक हैं और तब निम्नलिखित स्तुति द्वारा उन्हें प्रसन्न किया।

तात्पर्य : भगवान् कपिल ने अपनी माता के समक्ष जिस दर्शन-पद्धति का प्रतिपादन किया वह आध्यात्मिक पद पर स्थित होने की पृष्ठभूमि है। इस दर्शन पद्धति की विशिष्ट महत्ता *सिद्ध-भूमिम्* द्वारा यहाँ पर व्यक्त की गई है, जिसका अर्थ है मोक्ष की पृष्ठभूमि। भगवान् कपिल ने जिस सांख्य-दर्शन का प्रतिपादन किया है उसे समझकर माया द्वारा बद्ध लोग, जो इस संसार में दुख भोग रहे हैं, पदार्थ (जड़त्व) के चंगुल से छुटकारा पा सकते हैं। इस दर्शन पद्धति के द्वारा भौतिक जगत में स्थित व्यक्ति भी तुरन्त मुक्त हो सकता है। यह अवस्था *जीवन्-मुक्ति* कहलाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस भौतिक शरीर में रहते हुए भी मनुष्य मुक्त हो जाता है। भगवान् कपिल की माता देवहूति के साथ ऐसा ही हुआ, अतः उन्होंने अपनी स्तुतियों द्वारा भगवान् को सन्तुष्ट किया। जो भी सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त को समझता है, वह भक्ति को प्राप्त होता है और इसी संसार में वह कृष्णभावनाभावित अर्थात् मुक्त हो जाता है।

देवहूतिरुवाच
अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं
भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं
दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

देवहूतिः उवाच—देवहूति ने कहा; अथ अपि—और भी; अजः—ब्रह्मा जी; अन्तः-सलिले—जल में; शयानम्—लेटे हुए; भूत—भौतिक तत्त्व; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अर्थ—विषय; आत्म—मन; मयम्—से व्याप्त; वपुः—शरीर; ते—तुम्हारा; गुण-प्रवाहम्—प्रकृति के तीन तत्त्वों की धारा का उद्गम; सत्—प्रकट; अशेष—सबों का; बीजम्—बीज; दध्यौ—ध्यान किया; स्वयम्—स्वयं; यत्—जिसके; जठर—उदर से; अब्ज—कमल-पुष्प से; जातः—उत्पन्न।

देवहूति ने कहा : ब्रह्माजी अजन्मा कहलाते हैं, क्योंकि वे आपके उदर से निकलते हुए कमल-पुष्प से जन्म लेते हैं और आप ब्रह्माण्ड के तल पर समुद्र में शयन करते रहते हैं। लेकिन ब्रह्माजी ने भी केवल अनन्त ब्रह्माण्डों के उद्गम स्त्रोत, आपका ध्यान ही किया।

तात्पर्य : ब्रह्मा *अज* भी कहलाते हैं, क्योंकि *अज* का अर्थ है अजन्मा। जब भी हम किसी के जन्म की बात सोचते हैं, तो उसका कोई-न-कोई माता तथा पिता होना चाहिए, क्योंकि इन्हीं से वह जन्म लेगा। किन्तु ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड के प्रथम प्राणी होने के नाते उन भगवान् के शरीर से सीधे उत्पन्न हुए जो गर्भोदकशायी विष्णु अर्थात् ब्रह्माण्ड के तल पर समुद्र में शयन करने वाले विष्णु नाम से ज्ञात है। देवहूति भगवान् को यह बताना चाह रही थीं कि ब्रह्मा जब विष्णु का दर्शन करना चाहते हैं, तो उन्हें भी आपका ध्यान करना होता है। उन्होंने कहा, ''आप सारी सृष्टि के बीजस्वरूप हैं। यद्यपि ब्रह्मा सीधे आपसे उत्पन्न हुए हैं, किन्तु फिर भी जब वर्षों ध्यान करते हैं तब भी उन्हें आपके साक्षात् दर्शन नहीं हो पाते। आपका शरीर ब्रह्माण्ड के तल पर विपुल जल-राशि के भीतर लेटा है, अतः आप गर्भोदकशायी विष्णु कहलाते हैं।''

इस श्लोक में भगवान् के विराट शरीर की भी व्याख्या हुई है। यह शरीर दिव्य है और पदार्थ (जड़त्व) से अस्पृश्य। चूँकि यह संसार उनके शरीर से उत्पन्न हुआ है, अतः उनका शरीर सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान था। निष्कर्ष यह निकला कि विष्णु का दिव्य शरीर भौतिक

तत्त्वों से निर्मित नहीं है। विष्णु का शरीर अन्य समस्त जीवों के साथ-साथ भगवान् की शक्ति-स्वरूपा भौतिक प्रकृति का भी उद्गम है। देवहूति ने कहा, ''आप संसार तथा समस्त उद्भूत शक्ति के मूलाधार हैं, अत: आप इस प्रकार से सांख्य दर्शन की व्याख्या करके माया के पाश से मेरा उद्धार कर रहे हैं, तो इतनी आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु मेरी कोख से आपका जन्म लेना अवश्य ही आश्चर्यजनक है, क्योंकि समस्त सृष्टि के उद्गम होने पर भी आपने कृपा करके मेरे पुत्र रूप में जन्म लिया है। यही सबसे आश्चर्यजनक है। आपका शरीर समस्त ब्रह्माण्ड का उद्गम है फिर भी आपने मुझ जैसी स्त्री के उदर से शरीर धारण किया। मेरे लिए यही अत्यधिक विस्मयजनक लगता है।

स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्य: ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धिर्
आत्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्ति: ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

स:—वही पुरुष; एव—निश्चय ही; विश्वस्य—ब्रह्माण्ड का; भवान्—आप; विधत्ते—करते हैं; गुण-प्रवाहेण—गुणों की अन्त:क्रिया से; विभक्त—विभाजित; वीर्य:—आपकी शक्तियाँ; सर्ग-आदि—सृष्टि इत्यादि; अनीह:—निष्क्रिय; अवितथ—सार्थक; अभिसन्धि:—दृढ़संकल्प; आत्म-ईश्वर:—समस्त जीवों के स्वामी; अतर्क्य—अकल्पनीय; सहस्र—हजारों; शक्ति:—शक्तियों से युक्त।

हे भगवान्, यद्यपि आपको निजी रूप से कुछ करना नहीं रहता, किन्तु आपने अपनी शक्तियाँ प्रकृति के गुणों की अन्त:क्रियाओं में वितरित कर दी हैं जिसके बल पर दृश्यजगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है। हे भगवान्, आप दृढ़संकल्प हैं और समस्त जीवों के भगवान् हैं। आपने उन्हीं के लिए यह संसार रचा और यद्यपि आप एक हैं, किन्तु आपकी शक्तियाँ अनेक प्रकार से कार्य करती हैं। यह हमारे लिए अकल्पनीय है।

तात्पर्य : इस श्लोक में देवहूति ने कहा है कि यद्यपि परम सत्य को अपने आप कुछ भी नहीं करना होता तो भी उनकी विविध शक्तियाँ हैं। उसकी पुष्टि उपनिषदों में भी हुई है। उनसे न तो कोई बड़ा है, न ही कोई उनके समान है और सब कुछ उन्हीं की शक्ति से सम्पन्न होता

है मानो प्रकृति द्वारा हो रहा हो। अत: इससे यह पता चलता है कि यद्यपि विभिन्न गुणों का भार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जैसे स्वरूपों को प्रदत्त है, जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियाँ मिली हुई हैं और भगवान् इन कार्यकलापों से सर्वथा पृथक् रहते हैं। देवहूति कह रही हैं ''यद्यपि आप अपने से स्वयं कुछ भी नहीं कर रहे, किन्तु आपका संकल्प पूर्ण है। आपको अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपने सिवा और किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। आप अन्तत: परमात्मा तथा परम नियामक हैं। अत: आपकी इच्छा को कोई रोक नहीं सकता।'' भगवान् किसी की भी योजना को रोक सकता है। कहा भी गया है ''आपन चेती होइ नहिं प्रभु चेती तत्काल।'' किन्तु जब भगवान् चाहते हैं, तो उनकी इच्छा अन्य किसी के अधीन नहीं रहती। वे पूर्ण हैं। हम अपनी इच्छापूर्ति के लिए उन्हीं पर आश्रित हैं, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि ईश्वर की इच्छाएँ भी किसी के अधीन हैं। यही उनकी अकल्पनीय शक्ति है। सामान्य जीवों के लिए जो अकल्पनीय है उसे वे सहज ही कर सकते हैं। वे असीम होते हुए भी वैदिक साहित्य जैसे प्रामाणिक शास्त्रों द्वारा जाने जाते हैं। जैसाकि कहा गया है *शब्द मूलत्वात्* उन्हें शब्द ब्रह्म या वैदिक साहित्य द्वारा जाना जा सकता है।

यह सृष्टि क्यों की जाती है? सब जीवों के श्रीभगवान् होने के कारण ही उन्होंने यह भौतिक जगत उन जीवों के लिए उत्पन्न किया जो इसका भोग करना चाहते हैं या प्रकृति पर प्रभुता जताना चाहते हैं। परमेश्वर रूप में वे उनकी विभिन्न इच्छाओं को पूरा करने की व्यवस्था करते हैं। वेदों में भी पुष्टि की गई है—*एको बहूनां यो विदधाति कामान्*—परमेश्वर अनेक जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। विभिन्न प्रकार के जीवों की आवश्यकताओं का कोई अन्त नहीं है और केवल भगवान् ही उनका पालन करते तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी अकल्पनीय शक्ति द्वारा करते हैं।

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ
कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एक:

शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वही पुरुष; त्वम्—तुमने; भृतः—जन्म लिया है; मे जठरेण—मेरे उदर से; नाथ—हे भगवान्; कथम्—कैसे; नु—तब; यस्य—जिसके; उदरे—पेट में; एतत्—यह; आसीत्—स्थित था; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; युग-अन्ते—कल्प के अन्त में; वट-पत्रे—वट वृक्ष के पेड़ की पत्ती पर; एकः—अकेले; शेते स्म—सोते थे; माया—अकल्पनीय शक्तियों से युक्त; शिशुः—बालक; अङ्घ्रि—अँगूठा; पानः—चूसते हुए।

आपने मेरे उदर से श्रीभगवान् के रूप में जन्म लिया है। हे भगवन्, यह उस परमेश्वर के लिए किस प्रकार सम्भव हो सका जिसके उदर में यह सारा दृश्य-जगत स्थित है? इसका उत्तर होगा कि ऐसा सम्भव है, क्योंकि कल्प के अन्त में आप वटवृक्ष की एक पत्ती पर लेट जाते हैं और एकछोटे से बालक की भाँति अपने चरणकमल के अँगूठे को चूसते हैं।

तात्पर्य : प्रलय के समय भगवान् कभी-कभी एक शिशु के रूप में प्रकट होते हैं, जो प्रलयकारी जल पर तैरती बरगद की पत्ती पर लेटा रहता है। अतः देवहूति कहती हैं, ''मुझ जैसी सामान्य स्त्री के उदर में आपका लेटे रहना उतना आश्चर्यजनक नहीं है। आप तो बरगद की पत्ती पर लेट सकते हैं और शिशु की भाँति प्रलय-जल में तैरते रहते हैं। चूँकि यह अधिक आश्चर्यजनक नहीं है, अतः आप मेरे उदर में तो लेट ही सकते हैं। आप सिखाते हैं कि जो लोग इस संसार में सन्तान के इच्छुक होते हैं और जो विवाह करके सन्तान वाले परिवार का सुख उठाना चाहते हैं, उन्हें भगवान् के समान ही शिशु प्राप्त हो सकता है और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि भगवान् स्वयं अपना अगूँठा चूसते हैं।''

चूँकि सारे ऋषि तथा भक्त अपनी सारी शक्ति तथा सारे कार्यकलाप भगवान् के चरणकमलों की सेवा में अर्पित कर देते हैं, अतः उनके चरणकमलों के अँगूठे में अवश्य ही कोई दिव्य आनन्द होता होगा। भगवान् अपना अँगूठा उस अमृत को चखने के लिए चूसते हैं जिसकी आकांक्षा भक्तगण सदा ही करते हैं। कभी-कभी स्वयं भगवान् को आश्चर्य होता है कि उनके भीतर कितना दिव्य आनन्द समाया है, अतः अपनी शक्ति का स्वाद चखने के उद्देश्य से कभी-कभी वे अपना स्वाद लेते हैं। भगवान् चैतन्य साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु वे एक भक्त के रूप में प्रकट होते हैं जिससे वे समस्त भक्तों में सर्वोपरि श्रीमती राधारानी द्वारा पान किये

जानेवाले मधुर रस का स्वाद पा सकें।

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां
निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादय-
स्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुमने; देह—यह शरीर; तन्त्रः—धारण किया है; प्रशमाय—कम करने के लिए; पाप्मनाम्—पाप कर्मों का; निदेश-भाजाम्—भक्ति के उपदेश का; च—तथा; विभो—हे प्रभु; विभूतये—विस्तार के लिए; यथा—जिस प्रकार; अवतारा:—अवतार; तव—तुम्हारे; सूकर-आदय:—सूकर तथा अन्य रूप; तथा—उसी प्रकार; अयम्—यह कपिल अवतार; अपि—निश्चय ही; आत्म-पथ—आत्म-साक्षात्कार का मार्ग; उपलब्धये—दिखाने के लिए।

हे भगवान्, आपने पतितों के पापपूर्ण कर्मों को घटाने तथा उनके भक्ति एवं मुक्ति के ज्ञान को बढ़ाने के लिए यह शरीर धारण किया है। चूँकि ये पापात्माएँ आपके निर्देश पर आश्रित हैं, अतः आप स्वेच्छा से सूकर तथा अन्य रूपों में अवतरित होते हैं। इसी प्रकार आप अपने आश्रितों को दिव्य ज्ञान वितरित करने के लिए प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में भगवान् के सामान्य दिव्य गुणों का वर्णन था। अब भगवान् के प्राकट्य के विशिष्ट प्रयोजन का वर्णन किया जा रहा है। वे अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा उन जीवों को विविध प्रकार के शरीर प्रदान करते हैं, जो प्रकृति पर प्रभुता जताने की इच्छा के कारण बद्ध हैं, किन्तु कालक्रम से वे इतने पतित हो जाते हैं कि उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जब-जब इस संसार में वास्तविक उद्देश्य के सम्पन्न होने में त्रुटियाँ रह जाती हैं, तो भगवान् अवतार रूप में प्रकट होते हैं। कपिल के रूप में भगवान् का स्वरूप पतितों का निर्देशन करता है और उन्हें ज्ञान तथा भक्ति से समृद्ध करता है, जिससे वे भगवान् के धाम जा सकें। भगवान् के अवतार अनेक हैं—यथा वराह, मत्स्य, कच्छप तथा नृसिंह। कपिलदेव भी भगवान् के एक अवतार हैं। यहाँ यह स्वीकार किया गया है कि इस पृथ्वी पर भगवान् कपिलदेव का प्राकट्य पथभ्रष्ट बद्धजीवों को दिव्य ज्ञान प्रदान करने के लिए हुआ।

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका (भगवान् का); नामधेय—नाम; श्रवण—सुनना; अनुकीर्तनात्—कीर्तन से; यत्—जिसको; प्रह्वणात्—नमस्कार द्वारा; यत्—जिसको; स्मरणात्—स्मरण द्वारा; अपि—भी; क्वचित्—किसी समय; श्व-अदः—कुत्ता खाने वाला; अपि—भी; सद्यः—तुरन्त; सवनाय—वैदिक यज्ञ करने के लिए; कल्पते—पात्र बन जाता है; कुतः—क्या कहा जाय; पुनः—फिर; ते—तुम्हारे; भगवन्—भगवान्; नु—तब; दर्शनात्—साक्षात् दर्शन से।.

उन व्यक्तियों की आध्यात्मिक उन्नति के विषय में क्या कहा जाय जो परम पुरुष का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, यदि कुत्ता खाने वाले परिवार में उत्पन्न व्यक्ति भी भगवान् के पवित्र नाम का एक बार भी उच्चारण करता है अथवा उनका कीर्तन करता है, उनकी लीलाओं का श्रवण करता है, उन्हें नमस्कार करता है, या कि उनका स्मरण करता है, तो वह तुरन्त वैदिक यज्ञ करने के लिए योग्य बन जाता है।

तात्पर्य : यहाँ पर परमेश्वर के पवित्र नाम के कीर्तन, श्रवण अथवा स्मरण की आध्यात्मिक शक्ति पर बल दिया गया है। रूप गोस्वामी ने बद्धजीव के पापपूर्ण कर्मों की सूची दी है और *भक्ति-रसामृतसिन्धु* में प्रमाणित किया है कि जो लोग भक्ति योग में संलग्न रहते हैं, वे समस्त पापकर्मों के फलों से मुक्त हो जाते हैं। *भगवद्गीता* द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। भगवान् कहते हैं कि जो लोग मेरी शरण में आते हैं उनका दायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ और उन्हें समस्त पापकर्मों के फलों के प्रति निश्चेष्ट बना देता हूँ। यदि केवल नाम के कीर्तन मात्र से पापकर्मों के फल इतनी जल्दी धुल जाँय तो फिर उन पुरुषों का क्या कहना जो उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं ?

एक अन्य विचार जो यहाँ पर रखा गया है, वह यह है कि जो पुरुष कीर्तन तथा श्रवण द्वारा शुद्ध हो जाते हैं, वे तुरन्त वैदिक यज्ञ करने के पात्र बन जाते हैं। सामान्यतया, केवल वही व्यक्ति वैदिक यज्ञ कर सकता है, जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, दस प्रकार के संस्कारों से शुद्ध हो चुका हो और जो वैदिक साहित्य में विद्वान हो चुका हो। किन्तु यहाँ *सद्यः* अर्थात् *तुरन्त* शब्द प्रयुक्त हुआ है और श्रीधर स्वामी की भी टिप्पणी है कि मनुष्य तुरन्त वैदिक यज्ञ करने

का पात्र बन जाता है। निम्न जाति के परिवार में उत्पन्न मनुष्य जिसमें कुत्ता खाया जाता है, पूर्वजन्म से पापकर्मों के कारण इस स्थिति को प्राप्त होता है, किन्तु शुद्ध भाव से कीर्तन करने या सुनने से वह तुरन्त पापकर्मों से मुक्त हो जाता है। वह न केवल पापकर्मों से मुक्त हो जाता है, अपितु उसे तुरन्त समस्त विशुद्धीकरण की प्रक्रियाओं (संस्कारों) का फल प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेना निश्चय ही पूर्वजन्म में किये गये पुण्यों का फल होता है। तो भी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एक बालक यज्ञोपवीत संस्कार में दीक्षित होकर अपने को संस्कारित करता है। किन्तु यदि कोई भगवान् के पवित्रनाम का कीर्तन करता है, तो भले ही वह कुत्ता खाने वाले चण्डाल कुल में क्यों न जन्म ले, उसे किसी शुद्धीकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह केवल हरे कृष्ण का कीर्तन करके तुरन्त शुद्ध हो जाता है और विद्वान ब्राह्मण के समान ही उत्तम हो जाता है।

इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी की टिप्पणी है—*अनेन पूज्यत्वं लक्ष्यते*। कुछ ब्राह्मण जाति वाले कहते हैं कि हरे कृष्ण कीर्तन से शुद्धिकरण प्रारम्भ होता है। निस्सन्देह यह व्यक्तिगत कीर्तन पर निर्भर करता है, किन्तु स्वामी श्रीधर की यह टिप्पणी पूर्णतया लागू होती है कि यदि बिना अपराध के कोई भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो वह तुरन्त ब्राह्मण से बढ़कर बन जाता है। जैसाकि श्रीधर स्वामी का कहना है—*पूज्यत्वम्*—अर्थात् वह तुरन्त परम विद्वान ब्राह्मण के तुल्य आदरणीय बन जाता है और उसे वैदिक यज्ञ करने की अनुमति मिल सकती है। यदि केवल भगवन्नाम कीर्तन से कोई तुरन्त पवित्र हो जाता है, तो फिर उन सबका क्या कहना जो भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं और भगवान् के अवतरण को समझते हैं जिस प्रकार देवहूति कपिलदेव को समझती हैं।

सामान्यतया, दीक्षा शिष्य को निर्देशित करने वाले गुरु पर निर्भर करती है। यदि वह समझता है कि शिष्य दक्ष है और कीर्तन द्वारा शुद्ध हो गया है, तो वह उसका यज्ञोपवीत संस्कार कर देता है, जिससे वह शत-प्रति-शत ब्राह्मण के तुल्य हो जाय। इसकी पुष्टि श्रील सनातन गोस्वामीकृत *हरिभक्तिविलास* में इस प्रकार हुई है, ''जिस प्रकार रासायानिक विधि

द्वारा घंटे की धातु (काँसा) सोने में बदली जा सकती है उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति दीक्षा-विधान द्वारा ब्राह्मण में बदला जा सकता है।''

कभी-कभी कहा जाता है कि कीर्तन द्वारा मनुष्य अपने को शुद्ध करता है और अगले जन्म में किसी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर सुधर जाता है अथवा संस्कारित हो जाता है। किन्तु वर्तमान में जो लोग श्रेष्ठ ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेते हैं, वे संस्कार सम्पन्न नहीं हैं, न यही निश्चित है कि वे ब्राह्मण पिता से उत्पन्न हैं। पहले गर्भाधान संस्कार प्रचलित था, किन्तु अब ऐसा गर्भाधान या वीर्यदान संस्कार नहीं है। ऐसी दशा में कोई ठीक से यह नहीं जानता कि मनुष्य ब्राह्मण पिता से उत्पन्न है या नहीं। यह तो गुरु के निर्णय पर निर्भर करता है कि किसी ने ब्राह्मण के गुण प्राप्त कर लिये हैं या नहीं। वह अपने निर्णय द्वारा ही शिष्य को ब्राह्मण रूप में स्वीकार करता है। जब कोई पञ्चरात्रिक विधि से यज्ञोपवीत संस्कार में ब्राह्मण रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह द्विज कहलाता है। इसकी पुष्टि सनातन गोस्वामी द्वारा *द्विजत्वं जायते* कह कर की गई है। गुरु द्वारा दीक्षित किये जाने पर मनुष्य ब्राह्मण बनता है और इस शुद्ध अवस्था में वह भगवान् के पवित्र नाम का जप करता है। फिर प्रगति करता हुआ वह योग्य वैष्णव बन जाता है, जिसका अर्थ है कि उसने पहले से ब्राह्मण योग्यता प्राप्त कर ली है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ ७॥

शब्दार्थ

अहो बत—ओह, धन्य है; श्व-पचः—कुत्ता खाने वाला; अतः—अतएव; गरीयान्—पूज्य; यत्—जिसकी; जिह्वा-अग्रे—जीभ के अगले भाग पर; वर्तते—है; नाम—पवित्र नाम; तुभ्यम्—तुमको; तेपुः तपः—अभ्यासकृत तपस्या; ते—वे; जुहुवुः—अग्नि यज्ञ (हवन) सम्पन्न किये; सस्नुः—पवित्र नदियों में स्नान किया; आर्याः—आर्यजन; ब्रह्म अनूचुः—वेदों का अध्ययन किया; नाम—पवित्र नाम; गृणन्ति—स्वीकार करते हैं; ये—जो; ते—तुम्हारी।

ओह! वे कितने धन्य हैं जिनकी जिह्वाएँ आपके पवित्र नाम का जप करती हैं! कुत्ता खाने वाले वंशों में उत्पन्न होते हुए भी ऐसे पुरुष पूजनीय हैं। जो पुरुष आपके पवित्र

नाम का जप करते हैं उन्होंने सभी प्रकार की तपस्याएँ तथा हवन किये होंगे और आर्यों के सदाचार प्राप्त किये होंगे। आपके पवित्र नाम का जप करते रहने के लिए उन्होंने तीर्थस्थानों में स्नान किया होगा, वेदों का अध्ययन किया होगा और अपेक्षित हर वस्तु की पूर्ति की होगी।

तात्पर्य : जैसाकि पिछले श्लोक में आया है कि यदि कोई निरपराध भाव से एक बार भी भगवान् के पवित्र नाम का जप करता है, तो वह वैदिक यज्ञ करने का पात्र बन जाता है। *श्रीमद्भागवत* के इस कथन से किसी को चकित नहीं होना चाहिए। मनुष्य को न तो अविश्वास करना चाहिए, न यह सोचना चाहिए कि भगवान् का नाम जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण के तुल्य कैसे बन सकता है? अविश्वास करने वालों के मन से संदेह दूर करने के लिए ही यह श्लोक पुष्टि करता है कि भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की स्थिति सहसा प्राप्त नहीं हो जाती, अपितु जप करने वाला पहले सभी प्रकार के यज्ञ तथा अनुष्ठान कर चुका होता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि कोई भी व्यक्ति तब तक भगवान् के नाम का जप नहीं कर पाता जब तक वह नीचे की सारी अवस्थाएँ—यथा वैदिक अनुष्ठान करना, वेदों का अध्ययन तथा आर्यों जैसा सदाचार करना—पार नहीं कर लेता। पहले यह सब सम्पन्न कर लेना होगा। जिस प्रकार विधि के विद्यार्थी से यह आशा की जाती है, वह सामान्य शिक्षा में स्नातक होगा उसी तरह जो भी भगवान् के नाम-जप हरे कृष्ण महामन्त्र के जप में लगा हुआ है उसने नीचे की सारी अवस्थाएँ पार कर ली होंगी। यह कहा गया है कि जो अपनी जीभ के अग्रभाग से केवल नाम जप करते हैं, वे धन्य हैं। मनुष्य को पवित्र नाम का जप भी नहीं करना होता और न पूरी विधि समझने की आवश्यकता रहती है, जिसमें अपराधी अवस्था, निरपराधी अवस्था तथा शुद्ध अवस्था सम्मिलित हैं। यदि पवित्र नाम को जीभ के अगले भाग पर ला दिया जाए तो वही पर्याप्त है। यहाँ यह कहा गया है कि नाम—केवल एक नाम, चाहे राम हो या कृष्ण—पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि मनुष्य को भगवान् के सारे नामों का जप करना पड़े। भगवान् के नाम तो असंख्य हैं और मनुष्य को यह सिद्ध करने के लिए कि उसने समस्त

वैदिक अनुष्ठानों को पूरा कर लिया है, सारे नामों के जप की आवश्यकता नहीं रहती। यदि वह एक बार भी जप करता है, तो समझिए कि उसने सारी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली हैं। जो लोग चौबीसों घंटे जप करते रहते हैं उनकी तो कोई बात ही नहीं। यहाँ विशेष रूप से *तुभ्यम्* अर्थात् ''केवल तुझको'' प्रयुक्त हुआ है। मनुष्य को ईश्वर का नाम लेना चाहिए, मायावादी चिन्तकों की तरह कोई भी नाम नहीं। किसी देवता या भगवान् की शक्तियों के नाम नहीं। केवल परमेश्वर का नाम प्रभावशाली होता है। जो मनुष्य परमेश्वर के नाम की तुलना देवताओं से करता है, वह पाखंडी है, अपराधी है।

पवित्र नाम का कीर्तन किसी इन्द्रियतृप्ति या व्यवसाय की दृष्टि से नहीं, अपितु परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यदि यह शुद्ध भाव हो तो भले ही कोई निम्न परिवार में, यथा चण्डाल के घर में, क्यों न जन्म ले, वह धन्य है, क्योंकि वह न केवल अपने को शुद्ध करता है, अपितु अन्यों का उद्धार करने में समर्थ होता है। वह दिव्य नाम की महत्ता के विषय में बोल सकता है जैसा ठाकुर हरिदास ने किया। वे एक मुसलमान परिवार में जन्मे थे, किन्तु निष्कपट भाव से उन्होंने परमेश्वर का नाम जप किया, अत: भगवान् चैतन्य ने उन्हें नाम प्रचार का आचार्य बना दिया। वे उस कुल में उत्पन्न थे जहाँ वैदिक विधि-विधानों का पालन नहीं होता था। चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु ने उन्हें आचार्य रूप में स्वीकार किया, क्योंकि वे निष्कपट भाव से भगवन्नाम का जप करते थे। चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत प्रभु ने तुरन्त स्वीकार किया कि हरिदास ने पहले ही सारी तपस्याएँ कर ली हैं, वेदों का अध्ययन कर लिया है और सारे यज्ञ सम्पन्न कर लिए हैं। यह स्वत: ज्ञेय है। किन्तु वंश परम्परा वाले ब्राह्मण जिन्हें स्मार्त ब्राह्मण कहा जाता है, का मत है कि यदि भगवान्नाम जप करने वालों को शुद्ध मान लिया जाय तो भी उन्हें वैदिक अनुष्ठान कराने होते हैं या अगले जन्म में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने तक प्रतीक्षा करनी होती है, जिससे वे वैदिक अनुष्ठान कर सकें। किन्तु वस्तुत: ऐसा है नहीं। ऐसे व्यक्ति को शुद्ध होने के लिए अगले जन्म तक प्रतीक्षा नहीं करनी होती। वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। ऐसा मान लिया जाता है कि उसने सभी प्रकार के अनुष्ठान पहले से कर रखे हैं। ऐसे

अनेक वैदिक कार्य हैं जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ। पवित्र नाम का जप करने वाले उन्हें पहले ही सम्पन्न कर चुके होते हैं।

जुहुव: शब्द सूचित करता है कि भगवन्नाम का जप करने वाले पहले ही सारे यज्ञ कर चुकते हैं। *सस्नु:* का अर्थ है कि वे पहले ही सारे तीर्थस्थानों की यात्रा कर चुके हैं और उन स्थानों के शुद्धि-कर्मों में भाग ले चुके हैं। वे *आर्या:* कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने इन सारी आवश्यकताओं को पूरा कर लिया है, अत: उन्हें इन्हीं आर्यों में से होना चाहिए। *आर्यन्* उनको लक्षित करता है, जो सभ्य हैं और जिनके आचरण वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार हैं। कोई भी भक्त जो भगवन्नाम का जप करता है, वह श्रेष्ठ आर्य है। कोई वेदों का अध्ययन किये बिना आर्य नहीं हो सकता, किन्तु भगवन्नाम जप करने वालों को स्वत: मान लिया जाता है कि उन्होंने सारा वैदिक साहित्य पहले ही पढ़ लिया है। यहाँ पर *अनूचु:* विशिष्ट शब्द के रूप में प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है कि चूँकि उन्होंने समस्त संस्तुत कार्य कर लिए हैं, अत: वे गुरु होने के योग्य हैं।

इस श्लोक में प्रयुक्त *गृणन्ति* शब्द इसका सूचक है कि पहले से अनुष्ठानों के सम्पन्न करने से सिद्ध अवस्था प्राप्त हो चुकी है। यदि कोई उच्च न्यायालय की बेंच में आसीन होकर मुकद्दमों का फैसला करने लगता है, तो इसका अर्थ है कि उसने सारी विधि-परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली हैं और उन लोगों से श्रेष्ठ है, जो विधि परीक्षाएँ देने वाले हैं या भविष्य में विधि का अध्ययन करने की आकांक्षा रखते हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति भगवन्नाम का जप करते हैं, वे उनसे बढ़कर हैं, जो वास्तव में वैदिक अनुष्ठान करते हैं और जो योग्य बनने की आशा करते हैं (या दूसरे शब्दों में जो लोग ब्राह्मण कुलों में जन्म लेते हैं, किन्तु जिनके संस्कार नहीं हुए रहते फलत: वे भविष्य में वैदिक अनुष्ठानों का अध्ययन करने तथा यज्ञों को सम्पन्न करने की आशा बनाये हुए हैं)।

अनेक स्थलों पर ऐसे वैदिक कथन मिलते हैं जिनमें कहा गया है कि जो कोई भगवन्नाम का जप करता है, वह तुरन्त बद्ध जीवन से मुक्त हो जाता है और जो भगवन्नाम का श्रवण

करता है, वह भी, भले ही चण्डाल के घर क्यों न उत्पन्न हो, भव-पाश से छूट जाता है।

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; त्वाम्—तुमको; अहम्—मैं; ब्रह्म—ब्रह्म; परम्—परम; पुमांसम्—परमेश्वर को; प्रत्यक्-स्रोतसि—अन्तर्मुखी; आत्मनि—मन में; संविभाव्यम्—ध्यान किया, अनुभूत; स्व-तेजसा—अपनी शक्ति से; ध्वस्त—विलीन ; गुण-प्रवाहम्—प्रकृति के गुणों का प्रभाव; वन्दे—नमस्कार करती हूँ; विष्णुम्—विष्णु को; कपिलम्—कपिल नामक; वेद-गर्भम्—वेदों के आगार।

हे भगवान्, मुझे विश्वास है कि आप कपिल नाम से स्वयं पुरुषोम भगवान् विष्णु अर्थात् परब्रह्म हैं। सारे ऋषि-मुनि इन्द्रियों तथा मन के उद्वेगों से मुक्त होकर आपका ही चिन्तन करते हैं, क्योंकि आपकी कृपा से ही मनुष्य भव-बन्धन से छूट सकता है। प्रलय के समय सारे वेद आपमें ही स्थान पाते हैं।

तात्पर्य : कपिल की माता देवहूति ने अपनी प्रार्थना को और अधिक न बढ़ाकर संक्षेप में कहा कि भगवान् कपिल विष्णु ही हैं अन्य कोई नहीं हैं और चूँकि वे स्वयं एक स्त्री हैं, अत: केवल स्तुति से उनकी पूजा कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं है। उनकी अभिलाषा थी कि भगवान् प्रसन्न हों। यहाँ पर *प्रत्यक्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। योगाभ्यास के आठ अंग इस प्रकार हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। 'प्रत्याहार' का अर्थ है इन्द्रियों के कार्यकलाप समाप्त करना। देवहूति द्वारा भगवान् के जिस साक्षात्कार की बात कही जा रही है, वह तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों को सारे कार्यों से मोड़ ले। जब मनुष्य भक्ति में संलग्न रहता है, तो उसकी इन्द्रियों के इधर-उधर व्यस्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी पूर्ण कृष्णचेतना में मनुष्य भगवान् को उनके असली रूप में समझ सकता है।

मैत्रेय उवाच
ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ।
वाचाविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; ईडितः—प्रशंसा किये जाने पर; भगवान्—भगवान् ने; एवम्—इस प्रकार; कपिल-आख्यः—कपिल नामक; परः—परम; पुमान्—पुरुष; वाचा—शब्दों से; अविक्लवया—गम्भीर; इति—इस प्रकार; आह—उत्तर दिया; मातरम्—अपनी माता को; मातृ-वत्सलः—अपनी माता का दुलारा।

इस प्रकार अपनी माता के शब्दों से प्रसन्न होकर मातृवत्सल भगवान् कपिल ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् सर्व-पूर्ण हैं, अतः अपनी माता के प्रति उनका स्नेह का प्रदर्शन भी पूर्ण था। अपनी माता के शब्दों को सुनकर उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक गम्भीरता तथा शिष्टता के साथ उत्तर दिया।

कपिल उवाच

मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ।
आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

कपिलः उवाच—भगवान् कपिल ने कहा; मार्गेण—मार्ग के द्वारा; अनेन—इस; मातः—हे माता; ते—तुम्हारे लिए; सु-सेव्येन—सरलता से सम्पन्न होने वाला, सुगम; उदितेन—उपदेश दिया गया; मे—मेरे द्वारा; आस्थितेन—किया गया; पराम्—परम; काष्ठाम्—लक्ष्य; अचिरात्—शीघ्र; अवरोत्स्यसि—प्राप्त करोगी।

भगवान् ने कहा : हे माता, मैंने आपको जिस आत्म-साक्षात्कार के मार्ग का उपदेश दिया है, वह अत्यन्त सुगम है। आप बिना कठिनाई के इसका पालन कर सकती हैं और ऐसा करके आप इसी शरीर (जन्म) में शीघ्र ही मुक्त हो सकती हैं।

तात्पर्य : भक्ति इतनी पूर्ण होती है कि विधि-विधानों का पालन करने तथा गुरु के निर्देशन में उनको सम्पन्न करने से इसी शरीर में भी माया के चंगुल से मुक्त हुआ जा सकता है। अन्य योग-विधियों या ज्ञानयोग में मनुष्य को यह कभी निश्चय नहीं हो पाता कि उसे सिद्धि अवस्था प्राप्त होगी या नहीं। किन्तु भक्ति करने में यदि कोई प्रामाणिक गुरु के आदेशों में अविचल श्रद्धा रखता है और विधि-विधानों का पालन करता है, तो उसकी मुक्ति इसी शरीर में ही सम्भव है। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्ति-रसामृत-सिन्धु* में इसकी पुष्टि की है—*ईहा यस्य हरेर्दास्ये*—चाहे वह जहाँ भी स्थित हो, यदि उसका लक्ष्य गुरु के निर्देशानुसार परमेश्वर की सेवा करना हो तो वह *जीवन्मुक्त* अर्थात् अपने भौतिक शरीर में भी मुक्त कहलाता है। कभी-

कभी नवदीक्षितों के मन में सन्देह उत्पन्न होता है कि उनका गुरु मुक्त है या नहीं और कभी-कभी वे उसके शारीरिक मामलों के प्रति भी शंकालु रहते हैं। किन्तु मुक्ति के लिए गुरु के शारीरिक लक्षण नहीं देखे जाते। देखना है, तो गुरु के आध्यात्मिक लक्षण देखिये। *जीवन्मुक्त* का अर्थ है कि इसी भौतिक देह में (कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होते हुए भी) भगवान् की सेवा में पूर्णत: लगे होने के कारण वह मुक्त माना जाता है।

मुक्ति में अपने पद पर स्थित रहना सम्मिलित है। *श्रीमद्भागवत* में यही इसकी परिभाषा है—*मुक्तिर्...स्वरूपेण व्यवस्थिति:*। स्वरूप या जीव की वास्तविक पहचान का वर्णन चैतन्य महाप्रभु ने किया है। *जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्य दास'*—जीव की वास्तविक पहचान (स्वरूप) यह है कि वह भगवान् का नित्य दास है। यदि कोई शत प्रतिशत भगवान् की सेवा में व्यस्त रहता है, तो उसे मुक्त समझना चाहिए। किसी के मुक्त होने या न होने की पहचान उसके भक्ति-कार्य हैं, अन्य कोई लक्षण नहीं।

श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभि: ।
येन मामभयं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विद: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्रद्धत्स्व—आप आश्वस्त रहें; एतत्—इस विषय में; मतम्—उपदेश; मह्यम्—मेरा; जुष्टम्—पालन किया गया; यत्—जो; ब्रह्म-वादिभि:—अध्यात्मवादियों द्वारा; येन—जिससे; माम्—मुझको; अभयम्—भयरहित; याया:—तुम पहुँचोगी; मृत्युम्—मृत्यु को; ऋच्छन्ति—प्राप्त करते हैं; अ-तत्-विद:—जो लोग इससे अवगत नहीं हैं।

हे माता, जो लोग वास्तव में अध्यात्मवादी हैं, वे निश्चित ही मेरे उपदेशों का पालन करते हैं, जो मैंने आपको बताये हैं। आप आश्वस्त रहें, यदि आप इस आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर सम्यक रीति से चलेंगी तो आप समस्त भयावह भौतिक कल्मष से मुक्त होकर अन्त में मेरे पास पहुँचेंगी। हे माता, जो लोग भक्ति की इस विधि से अवगत नहीं हैं, वे जन्म-मरण के चक्र से बाहर नहीं निकल सकते।

तात्पर्य : यह संसार चिन्ताओं से पूर्ण है, अत: भयावह है। जो इस संसार से छूट जाता है, वह स्वत: सभी चिन्ताओं तथा भय से मुक्त हो जाता है। जो भगवान् कपिल द्वारा प्रतिपादित भक्ति-पथ का अनुसरण करते हैं, वे आसानी से मुक्त हो जाते हैं।

मैत्रेय उवाच
इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिम् ।
स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेय: उवाच—मैत्रेय ने कहा; इति—इस प्रकार; प्रदर्श्य—उपदेश देकर; भगवान्—भगवान्; सतीम्—आदरणीया को; ताम्—उस; आत्मन:—आत्म-साक्षात्कार का; गतिम्—पथ; स्व-मात्रा—अपनी माता से; ब्रह्म-वादिन्या—स्वरूपसिद्ध; कपिल:—भगवान् कपिल के; अनुमत:—आज्ञा ली; ययौ—चला गया।.

श्री मैत्रेय ने कहा : अपनी ममतामयी माता को उपदेश देकर भगवान् कपिल ने उनसे आज्ञा माँगी और अपना लक्ष्य पूरा हो जाने के कारण उन्होंने अपना घर छोड़ दिया।

तात्पर्य : कपिल के रूप में भगवान् के प्रकट होने का लक्ष्य सांख्य दर्शन के दिव्य ज्ञान को वितरित करना था, जो भक्ति से पूर्ण है। अपनी माता को—और अपनी माता के माध्यम से सारे संसार को—यह ज्ञान देकर उन्होंने अपनी माता से अनुमति माँगी और चले गये, क्योंकि फिर घर पर और अधिक रुकने की आवश्यकता न थी। स्पष्ट है कि उन्होंने आत्म-बोध के लिए गृहत्याग किया, यद्यपि स्वरूप-सिद्ध होने के कारण उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से कुछ भी अनुभव करने के लिए शेष नहीं था। अत: भगवान् ने सामान्य व्यक्ति की भाँति आचरण करते हुए यह उदाहरण प्रस्तुत किया जिससे अन्य लोग उनसे शिक्षा ग्रहण करें। निस्सन्देह वे अपनी माता के पास रह सकते थे, किन्तु उन्होंने बताया कि परिवार में उनके रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। सबसे अच्छा है ब्रह्मचारी, संन्यासी या वानप्रस्थ बनकर अकेले रहा जाय और जीवन भर कृष्णचेतना का अनुशीलन किया जाय। जो लोग अकेले नहीं रह सकते उन्हें गृहस्थ जीवन में अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ रहने की छूट है, जो इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं, अपितु कृष्णचेतना के अनुशीलन के लिए दी जाती है।

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ।
तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्या: समाहिता ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; च—तथा; अपि—भी; तनय—अपने पुत्र द्वारा; उक्तेन—कहा गया; योग-आदेशेन—योग सम्बन्धी उपदेश से; योग-युक्—भक्तियोग में लगी हुई; तस्मिन्—उस; आश्रमे—कुटिया में; आपीडे—फूलों का मुकुट; सरस्वत्या:—सरस्वती का; समाहिता—समाधि में स्थिर।.

अपने पुत्र के उपदेशानुसार देवहूति उसी आश्रम में भक्तियोग का अभ्यास करने लगीं। उन्होंने कर्दम मुनि के घर में समाधि लगाई, जो फूलों से इस प्रकार सुसज्जित था मानो सरस्वती नदी का फूलों का मुकुट हो।

तात्पर्य : देवहूति ने अपना घर नहीं छोड़ा, क्योंकि स्त्री के लिए घर छोड़ने की कभी भी संस्तुति नहीं की जाती। वह पराश्रित होती है। यही देवहूति, विवाह के पूर्व अपने पिता स्वायंभुव मनु के संरक्षण में थीं, फिर उनके पिता ने कर्दम मुनि को सौंप दिया। अपनी युवावस्था में वे अपने पति के संरक्षण में थीं और तभी उन्होंने पुत्र रूप में कपिल को जन्म दिया। ज्योंही पुत्र बड़ा हुआ, उनके पति ने घर त्याग दिया। वे चाहतीं तो घर छोड़ सकती थीं, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे घर में ही रहकर अपने महान् पुत्र कपिल मुनि के उपदेश के अनुसार भक्तियोग का अभ्यास करने लगीं। उनके भक्तियोग के कारण ही उनका पूरा घर सरस्वती नदी पर फूल के मुकुट-सा बन गया।

अभीक्ष्णावगाहकपिशान्जटिलान्कुटिलालकान् ।
आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

अभीक्ष्ण—पुनः पुनः, बारम्बार; अवगाह—नहाने से; कपिशान्—भूरे; जटिलान्—जटा रूप; कुटिल—घुंघराले; अलकान्—बाल; आत्मानम्—उनका शरीर; च—तथा; उग्र-तपसा—कठोर तपस्या से; बिभ्रती—हो गया; चीरिणम्—चिथड़ों से ढकी; कृशम्—दुबली।

वे तीन बार स्नान करने लगीं और इस तरह उनके घुँघराले काले-काले बाल क्रमशः भूरे पड़ गये। तपस्या के कारण उनका शरीर धीरे-धीरे दुबला हो गया और वे पुराने वस्त्र धारण किये रहीं।

तात्पर्य : *योगी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ* तथा *सन्यासी* दिन में कम से कम तीन बार—प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल स्नान करते हैं। यहाँ तक कि कुछ गृहस्थ, विशेष रूप से ब्राह्मण भी इसका पालन करते हैं। देवहूति एक राजा की पुत्री और राजा तुल्य की पत्नी भी थीं। यद्यपि कर्दम मुनि राजा न थे, किन्तु अपने योग से उन्होंने देवहूति को दासियों समेत तथा समस्त ऐश्वर्य के साथ रखा। किन्तु उन्होंने अपने पति के रहते ही तपस्या सीख ली थी, अतः उन्हें

संयम बरतने में कोई कठिनाई नहीं हुई। फिर भी अपने पति तथा पुत्र के चले जाने के बाद उन्हें कठिन तपस्या करनी पड़ी जिससे वे दुर्बल हो गईं। आध्यात्मिक जीवन में अधिक मोटा होना अच्छा नहीं है, अपितु मनुष्य को दुर्बल होना चाहिए, क्योंकि मोटा होने पर आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति में बाधा पहुँचती है। मनुष्य को न तो अधिक खाना चाहिए, न अधिक सोना चाहिए और न अधिक आराम करना चाहिए। ऐच्छिक रूप से मनुष्य को कम भोजन करना चाहिए तथा कम सोना चाहिए। ये ही किसी योग के साधन की विधियाँ हैं—चाहे वह भक्तियोग हो, *ज्ञानयोग* या *हठयोग*।

प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ।
स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

प्रजा-पतेः—प्रजापति, मानव जाति के जनक; कर्दमस्य—कर्दम मुनि की; तपः—तपस्या से; योग—योग से; विजृम्भितम्—विकसित, समृद्ध; स्व-गार्हस्थ्यम्—अपना घर तथा गृहस्थी; अनौपम्यम्—अद्वितीय; प्रार्थ्यम्—ईर्ष्या की वस्तु; वैमानिकैः—स्वर्ग के वासियों से; अपि—भी।

प्रजापति कर्दम का घर तथा उनकी गृहस्थी उनकी तपस्या तथा योग के बल पर इस प्रकार समृद्ध थी कि उनके ऐश्वर्य से आकाश में विमान से यात्रा करने वाले लोग भी ईर्ष्या करते थे।

तात्पर्य : इस श्लोक में आया कथन कि कर्दम मुनि की गृहस्थी को देखकर बाह्य अन्तरिक्ष के पुरुष भी ईर्ष्या करते थे, वस्तुतः स्वर्ग के निवासियों के लिए है। उनके विमान आजकल के विमानों जैसे नहीं होते थे, जो केवल एक देश से दूसरे देश तक उड़ान भरते हैं, अपितु उनके विमान एक लोक से दूसरे तक यात्रा करने में समर्थ थे। *श्रीमद्भागवत* में ऐसे अनेक उल्लेख हैं जिनसे प्रकट है कि एक लोक से दूसरे लोक तक यात्रा करने की सुविधाएँ थीं और कौन जाने अब भी वे यात्रा कर रहे हों!

हमारे विमानों तथा अन्तरिक्ष यानों की गति अत्यन्त सीमित है, किन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि कर्दम मुनि बाह्य अन्तरिक्ष में ऐसे विमान से यात्रा करते थे, जो नगर जैसा था और उन्होंने सभी लोकों की यात्रा की थी। वह न तो सामान्य विमान था और न वह यात्रा सामान्य

अन्तरिक्ष यात्रा थी। चूँकि कर्दम मुनि अत्यन्त शक्तिशाली योगी थे, अत: उनके ऐश्वर्य से स्वर्ग के निवासी ईर्ष्या करते थे।

पय:फेननिभा: शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदा: ।
आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६॥

शब्दार्थ

पय:—दूध का; फेन—फेन; निभा:—सदृश; शय्या:—पलँग; दान्ता:—हाथी-दाँत के; रुक्म—सुनहले; परिच्छदा:—पर्दों सहित; आसनानि—कुर्सियाँ तथ बेंचें; च—तथा; हैमानि—सोने की; सु-स्पर्श—छूने में मुलायम; आस्तरणानि—गद्दियाँ; च—तथा।

यहाँ पर कर्दम मुनि के घरेलू ऐश्वर्य का वर्णन हुआ है। चादर तथा चटाइयाँ दूध के फेन के समान श्वेत थीं, कुर्सियाँ तथा बेंचें हाथीदाँत की बनी थीं और वे सुनहरी जरीदार वस्त्र से ढकी थीं तथा पलँग सोने के बने थे जिन पर अत्यन्त मुलायम गद्दियाँ थीं।

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नप्रदीपा आभान्ति ललना रत्नसंयुता: ॥ १७॥

शब्दार्थ

स्वच्छ—शुद्ध; स्फटिक—संगमरमर; कुड्येषु—दीवालों पर; महा-मारकतेषु—मूल्यवान मरकत मणि से अलंकृत; च—तथा; रत्न-प्रदीपा:—मणियों के दीपक; आभान्ति—चमकते है; ललना:—स्त्रियाँ; रत्न—आभूषणों से; संयुता:—अलंकृत।

घर की दीवालें उत्तमकोटि के संगमरमर की थीं और बहुमूल्य मणियों से अलंकृत थीं। वहाँ प्रकाश की आवश्यकता न थी, क्योंकि इन मणियों की किरणों से घर प्रकाशित था। घर की सभी स्त्रियाँ आभूषणों से अलंकृत थीं।

तात्पर्य : इस कथन से पता चलता है कि गृहस्थी का ऐश्वर्य बहुमूल्य मणियों, हाथीदाँत, अच्छे संगमरमर तथा सोने और मणियों के बने साज-सामान से प्रदर्शित होता था। कपड़े भी सुनहरी जरी से युक्त थे। हर वस्तु का कुछ न कुछ मूल्य होता था। वहाँ आज के जैसा साज-समान न था, जो मूल्यरहित प्लास्टिक या निम्न धातु का बना होता है। वैदिक सभ्यता का ढंग था कि घेरलू कामकाज में जो भी वस्तु प्रयुक्त होती थी वह मूल्यवान होती थी। आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त इनका विनिमय किया जा सकता था। इस तरह यदि किसी का सामान टूट भी

जाय तो उसका भी मूल्य होगा। आज भी भारतीय जन अपने घरों में इसी पद्धति को अपनाते हैं। वे धातु के बर्तन तथा स्वर्णभूषण या चाँदी के बने बर्तन और सोने की जरी वाले मूल्यवान रेशमी वस्त्र रखते हैं जिससे आवश्यकता पड़ने पर विनिमय में उन्हें कुछ धन मिल सके। उधार देने वालों तथा गृहस्थों के बीच ऐसा विनिमय चलता है।

गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

गृह-उद्यानम्—घरेलू बाग; कुसुमितैः—फूलों तथा फलों से; रम्यम्—सुन्दर; बहु-अमर-द्रुमैः—अनेक कल्पवृक्षों सहित; कूजत्—गाते हुए; विहङ्ग—पक्षियों का; मिथुनम्—जोड़ा; गायत्—गुनगुनाती; मत्त—मतवाली; मधु-व्रतम्—मधुमक्खियों सहित।

मुख्य घर का आँगन सुन्दर बगीचों से घिरा था जिनमें मधुर सुगन्धित फूल तथा अनेक वृक्ष थे जिनमें ताजे फल उत्पन्न होते थे और वे ऊँचे तथा सुन्दर थे। ऐसे बगीचों का आकर्षण यह था कि गाते पक्षी वृक्षों पर बैठते और उनके कलरव से तथा मधुमक्खियों की गुंजार से सारा वातावरण यथासम्भव मोहक बना हुआ था।

यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ।
वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; प्रविष्टम्—प्रविष्ट हुए; आत्मानम्—अपने ही; विबुध-अनुचराः—स्वर्ग के वासियों के संगी; जगुः—गाया; वाप्याम्—ताल में; उत्पल—कमल; गन्धिन्याम्—सुगंध से; कर्दमेन—कर्दम द्वारा; उपलालितम्—सावधानी से पाला गया।

जब देवहूति उस सुन्दर बगीचे में कमल फूलों से भरे हुए ताल में स्नान करने के लिए प्रवेश करतीं तो स्वर्गवासियों के संगी गन्धर्वगण कर्दम के महिमामय गृहस्थ जीवन का गुणगान करते। देवहूति के महान् पति कर्दम उन्हें सभी कालों में सुरक्षा प्रदान करते रहे।

तात्पर्य : इस श्लोक में आदर्श पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णित है। कर्दम मुनि पति रूप में देवहूति को सुख के सारे प्रमुख साधन प्रदान करते थे, किन्तु वे अपनी

पत्नी के प्रति तनिक भी आसक्त न थे। ज्योंही कपिल बड़े हो गये वैसे ही कर्दम ने सारे पारिवारिक सम्बन्ध तोड़ लिये। इसी प्रकार, देवहूति एक महान् राजा स्वायंभुव मनु की पुत्री थी, वह योग्य और सुन्दर थी, किन्तु वह अपने पति की सिद्धि पर पूर्णतया आश्रित थी। मनु के अनुसार, स्त्री को जीवन की किसी भी अवस्था में स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए। बालपन में स्त्री को अपने माता-पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के संरक्षण में और बुढ़ापे में अपने सयाने पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। *मनुसंहिता* के इन सारे कथनों को देवहूति ने अपने जीवन में उतार लिया था—बालिका रूप में वह अपने पिता के आश्रित थी, बाद में ऐश्वर्यमान होते हुए भी अपने पति के तथा अन्त में अपने पुत्र कपिलदेव के आश्रय में थी।

हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ।
किञ्चिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हित्वा—त्याग कर; तत्—वह घर; ईप्सित-तमम्—अभीष्ट; अपि—ही; आखण्डल-योषिताम्—इन्द्र की पत्नियों द्वारा; किञ्चित् चकार वदनम्—उसके मुख पर उदासी छायी थी; पुत्र-विश्लेषण—अपने पुत्र के वियोग से; आतुरा—दुखी।

यद्यपि उनकी स्थिति सभी प्रकार से अद्वितीय थी, किन्तु साध्वी देवहूति ने इतनी सम्पत्ति होते हुए भी, जिसकी ईर्ष्या स्वर्ग की सुन्दरियाँ भी करती थीं, अपने सारे सुख त्याग दिये। उन्हें यह शोक था कि उनका इतना महान् पुत्र उनसे विलग हो रहा है।

तात्पर्य : देवहूति को अपने भौतिक सुख छोड़ने का दुख न था, किन्तु वे अपने पुत्र के वियोग से अत्यन्त शोकाकुल थीं। यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब देवहूति को अपनी सारी सुख-सुविधाएँ त्यागने का कोई शोक न था, तो अपने पुत्र के जाने का इतना शोक क्यों था? वे अपने पुत्र के प्रति इतनी आसक्त क्यों थी? अगले श्लोक में इसका उत्तर दिया गया है। उनका पुत्र कपिल सामान्य पुत्र न था। वह भगवान् था। कोई व्यक्ति भौतिक आसक्ति को तभी त्याग सकता है जब उसकी आसक्ति परम पुरुष के प्रति हो। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* में हुई है—*परं दृष्ट्वा निवर्तते*। जब किसी में आध्यात्मिक जगत के प्रति रुचि होती है तभी वह भौतिक जीवन के प्रति उदासीन रहता है।

वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ।
ज्ञाततत्त्वाप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

वनम्—वन को; प्रव्रजिते पत्यौ—पति के चले जाने पर; अपत्य-विरह—अपने पुत्र के विरह से; आतुरा—अत्यन्त दुखी; ज्ञात-तत्त्वा—सत्य का ज्ञान; अपि—यद्यपि; अभूत्—हो गई; नष्टे वत्से—बछड़ा मर जाने पर; गौ:—गाय; इव—के सदृश; वत्सला—स्नेहिल।

देवहूति के पति ने पहले ही गृहत्याग करके संन्यास आश्रम ग्रहण कर लिया था और तब उनके एकमात्र पुत्र कपिल ने घर छोड़ दिया। यद्यपि उन्हें जीवन तथा मृत्यु के सारे सत्य ज्ञात थे और यद्यपि उनका हृदय सभी प्रकार के मल से रहित था, किन्तु वे अपने पुत्र के जाने से इस तरह दुखी थीं जिस प्रकार कि बछड़े के मरने पर गाय दुखी होती है।

तात्पर्य : जिस स्त्री का पति घर से दूर हो या संन्यासी हो गया हो उसे अत्यन्त दुखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि उसके पति का प्रतिनिधि, उसका पुत्र उसके पास रहता है। शास्त्रों का वचन है—*आत्मैव पुत्रो जायते*—पति के शरीर का प्रतिनिधित्व पुत्र करता है। यदि स्त्री के वयस्क पुत्र हो तो वह विधवा नहीं होती। जब कपिल मुनि उनके पास थे तो देवहूति अधिक विकल नहीं थीं, किन्तु उनके विदा होते ही वे अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं। वे इसलिए शोक-संतप्त नहीं थीं कि कर्दम मुनि के साथ उनका संसारी सम्बन्ध था, अपितु भगवान् के प्रति अपने सत्यनिष्ठ प्रेम के कारण वे संतप्त थीं।

यहाँ उदाहरण दिया गया है कि देवहूति उस गाय के तुल्य हो गईं जिसने अपना बछड़ा खो दिया हो। अपने बछड़े से बिछुड़ कर गाय रात-दिन तड़फड़ाती है। इसी प्रकार देवहूति दुखी थीं और अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से यही प्रार्थना करतीं "मेरे पुत्र को घर ला दो जिससे मैं जीवित रह सकूँ अन्यथा मैं मर जाऊँगी।" भगवान् के प्रति यह प्रगाढ़ स्नेह, यद्यपि अपने पुत्र-प्रेम के रूप में प्रकट होता है, आध्यात्मिक दृष्टि से लाभप्रद होता है। अपने पुत्र के प्रति आसक्ति होने से मनुष्य इसी संसार में रहने के लिए बाध्य होता है, किन्तु वही आसक्ति भगवान् के प्रति होने पर उसे वैकुण्ठलोक में भगवान् की संगति में ले जाती है।

हर स्त्री अपने को देवहूति के समान योग्य बनाकर भगवान् को अपने पुत्र के रूप में प्राप्त

कर सकती है। यदि भगवान् देवहूति के पुत्र रूप में प्रकट हो सकते हैं, तो वे अन्य किसी स्त्री के भी पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकते हैं। हाँ, तभी जब वह स्त्री सुयोग्य हो। यदि किसी को पुत्र रूप में भगवान् मिल जाँय तो उसे इस संसार में सुपुत्र पालन का लाभ मिल सकता है और साथ ही वैकुण्ठलोक का लाभ, जिससे वह भगवान् का साक्षात् पार्षद बन सकता है।

तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ।
बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥ २२॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; एव—निश्चय ही; ध्यायती—ध्यान करती; देवम्—दैवी; अपत्यम्—पुत्र; कपिलम्—कपिल को; हरिम्—भगवान्; बभूव—हो गयी; अचिरतः—तुरन्त; वत्स—हे विदुर; निःस्पृहा—अनासक्त; तादृशे गृहे—ऐसे घर के प्रति।

हे विदुर, इस प्रकार अपने पुत्र भगवान् कपिलदेव का ध्यान करती हुईं वे शीघ्र ही उत्तम ढंग से सजे अपने घर के प्रति अनासक्त हो उठीं।

तात्पर्य : यहाँ पर आध्यात्मिक उदाहरण प्राप्त है कि किस तरह कोई कृष्णभावनामृत द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। कपिलदेव कृष्ण हैं और वे देवहूति के पुत्र रूप में प्रकट हुए। कपिलदेव के गृहत्याग के बाद देवहूति उनके विचार में मग्न थीं और इस तरह वे सदा कृष्णभावनाभावित थीं। निरन्तर कृष्णचेतना में स्थित होने से वे अपने-आपको गृहस्थी से विरक्त कर सकीं।

जब तक हम अपनी आसक्ति को भगवान् में स्थानान्तरित नहीं कर देते तब तक भौतिक आसक्ति से छूटने की कोई सम्भावना नहीं रहती। अतः *श्रीमद्भागवत* पुष्टि करता है कि केवल ज्ञानयोग के अनुशीलन से मुक्त होना सम्भव नहीं है। केवल इतना जान लेने से कि मनुष्य पदार्थ नहीं, अपितु आत्मा या ब्रह्म है, उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हो जाती। यदि निर्विशेषवादी आध्यात्मिक बोध की पराकाष्ठा तक पहुँच भी जाय तो वह पुनः भौतिक आसक्ति में आ गिरता है, क्योंकि वह परमेश्वर की दिव्य प्रेमा-भक्ति में स्थित नहीं होता है।

भक्तगण भगवान् की लीलाओं का श्रवण करते हुए तथा उनके कार्यकलापों की महिमा का गान करते हुए और इस तरह उनके सुन्दर दिव्य रूप का सतत स्मरण करते हुए भक्तियोग को

अपना लेते हैं। मनुष्य सेवा करके, उनका मित्र या दास बनकर तथा अपना सर्वस्व अर्पित करके ईश्वर के धाम जाने में समर्थ होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा*—शुद्ध भक्ति करके मनुष्य भगवान् को जान सकता है और इस तरह वह स्वर्गलोक में उनकी संगति में पहुँचने का अधिकारी हो जाता है।

ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ।
सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ध्यायती—ध्यानमग्न; भगवत्-रूपम्—भगवान् के स्वरूप को; यत्—जो; आह—उपदेश दिया; ध्यान-गोचरम्—ध्यान की वस्तु; सुतः—अपना पुत्र; प्रसन्न-वदनम्—प्रसन्नमुख से; समस्त—समग्र; व्यस्त—अंगों का; चिन्तया—अपने मन से।

तत्पश्चात् निरन्तर हँसमुख अपने पुत्र भगवान् कपिलदेव से अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक एवं विस्तारपूर्वक सुनकर देवहूति परमेश्वर के विष्णुस्वरूप का निरन्तर ध्यान करने लगीं।

भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ।
युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥
विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ।
स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भक्ति-प्रवाह-योगेन—निरन्तर भक्ति में लगे रहने से; वैराग्येण—वैराग्य द्वारा; बलीयसा—अत्यन्त प्रबल; युक्त-अनुष्ठान—उचित ढंग से कर्मों को करने से; जातेन—उत्पन्न; ज्ञानेन—ज्ञान से; ब्रह्म-हेतुना—ब्रह्म-साक्षात्कार होने से; विशुद्धेन—शुद्धिकरण से; तदा—तब; आत्मानम्—भगवान् को; आत्मना—मन से; विश्वतः-मुखम्—जिसका मुख चारों ओर घूमता है; स्व-अनुभूत्या—आत्म-साक्षात्कार से; तिरः-भूत—अप्रकट; माया-गुण—प्रकृति के गुणों का; विशेषणम्—विशेष।

उन्होंने भक्ति में गम्भीरतापूर्वक संलग्न रह कर ऐसा किया। चूँकि उनका वैराग्य प्रबल था, अतः उन्होंने मात्र शरीर की आवश्यकताओं को ग्रहण किया। वे ब्रह्म-साक्षात्कार के कारण ज्ञान में व्यवस्थित हुईं, उनका हृदय शुद्ध हो गया, वे भगवान् के ध्यान में पूर्णतः निमग्न हो गईं और प्रकृति के गुणों से उत्पन्न सारी दुर्भावनाएँ समाप्त हो गईं।

ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ।
निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मणि—ब्रह्म में; अवस्थित—स्थित; मतिः—मन; भगवति—भगवान् में; आत्म-संश्रये—सभी जीवों में वास करने वाला; निवृत्त—मुक्त; जीव—जीवात्मा का; आपत्तित्वात्—दुर्भाग्य से; क्षीण—लुप्त; क्लेश—कष्ट; आप्त—प्राप्त; निर्वृतिः—दिव्य आनन्द।

उनका मन भगवान् में पूर्णतः निमग्न हो गया और उन्हें स्वतः निराकार ब्रह्म का बोध हो गया। ब्रह्म-सिद्ध आत्मा के रूप में वे भौतिक जीवन-बोध की उपाधियों से मुक्त हो गईं। इस प्रकार उनके सारे क्लेश मिट गये और उन्हें दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में बताया गया है कि देवहूति पहले से परम सत्य से अवगत थीं। अतः यह प्रश्न किया जा सकता है कि फिर वे ध्यान क्यों कर रही थीं? बात यह है कि जब कोई सिद्धान्त रूप में परम सत्य की व्याख्या करता है, तो उसे परम सत्य की निराकार प्रतीति होने लगती है। इसी प्रकार जब कोई उनके स्वरूप, गुण, लीला तथा उनके पार्षदों के विषय में गम्भीरतापूर्वक विवेचन करता है, तो वह उनके ध्यान में स्थित होता है। परमेश्वर का ज्ञान पूर्ण हो जाने पर स्वतः निराकार ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ज्ञाता परमेश्वर को तीन दृष्टियों से अनुभव करता है—निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। अतः यदि कोई परमेश्वर के ज्ञान में स्थित है, तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसे परमात्मा तथा निराकार ब्रह्म की प्रतीति है।

भगवद्गीता का वचन है—*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा*। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक मनुष्य भवबन्धन से मुक्त नहीं होता और ब्रह्म में स्थित नहीं हो जाता, तब तक भक्ति को समझने या कृष्णभावनामृत में प्रवृत्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो कोई कृष्ण की भक्ति में लग जाता है उसे पहले ही ब्रह्म की प्रतीति हो चुकी होती है, क्योंकि भगवान् के दिव्य ज्ञान में ब्रह्मज्ञान सम्मिलित है। *भगवद्गीता* द्वारा इसकी पुष्टि होती है—*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*—श्रीभगवान् की प्रतीति ब्रह्म पर निर्भर नहीं होती है। *विष्णु पुराण* भी पुष्टि करता है कि जिसने सर्वमंगल परमेश्वर की शरण ग्रहण कर ली है, वह पहले से ब्रह्मज्ञान में स्थित रहता है। दूसरे शब्दों में, जो वैष्णव होता है, वह पहले से ब्राह्मण होता है।

इस श्लोक की दूसरी विशेष बात यह है कि मनुष्य को निर्दिष्ट विधि-विधानों का पालन करना होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है—*युक्ताहार विहारस्य*। जब कोई कृष्णभावनामृत भक्ति में प्रवृत्त होता है तब भी उसे खाना, सोना, रक्षा करना तथा मैथुन करना होता है, क्योंकि ये जीवन की आवश्यकताएँ हैं। किन्तु वह इन कार्यों को नियामक ढंग से करता है। उसे कृष्ण-प्रसाद खाना होता है। उसे नियमबद्ध विधि से सोना होता है। सिद्धान्त यह है कि नींद की अवधि कम की जाय तथा भोजन कम किया जाय और उतना ही ग्रहण किया जाय जितने से शरीर ठीक-ठाक रहे। संक्षेप में कहना चाहें तो यह कि जीवन का उद्देश्य इन्द्रियतृप्ति न होकर आध्यात्मिक उन्नति होता है। इसी प्रकार संभोग में कमी की जानी चाहिए। संभोग का उद्देश्य केवल कृष्णभक्त सन्तान उत्पन्न करना है, अन्यथा संभोग की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी वस्तु की मनाही नहीं है, किन्तु प्रत्येक वस्तु मन में सदुद्देश्य रखकर *युक्त* अर्थात् नियमित बनाई जाती है। जीवन के इन विधि-विधानों का पालन करते हुए मनुष्य शुद्ध हो जाता है और अविद्याजनित सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं। यहाँ इसका विशिष्ट उल्लेख है कि भवबन्धन के सारे कारण नष्ट हो जाते हैं।

अनर्थ-निवृत्ति सूचित करता है कि यह शरीर अवांछित है। हम तो आत्मा हैं और इस भौतिक शरीर की हमें कोई आवश्यकता नहीं थी। किन्तु हमने शरीर का भोग करना चाहा, अत: हमें भगवान् के निर्देशन में माया के माध्यम से यह शरीर मिला। ज्योंही हम भगवान् के साथ अपने दास्यभाव का पूर्वसम्बन्ध स्थापित कर लेंगे, हम शरीर की आवश्यकताएँ भूलने लगेंगे और अन्त में हम शरीर को भूल जाएँगे।

कभी-कभी स्वप्न में हमें ऐसा शरीर प्राप्त होता है, जिसके द्वारा हम स्वप्न में कार्य करते हैं। मुझे स्वप्न आ सकता है कि मैं आकाश में उड़ रहा हूँ, या किसी जंगल या अज्ञात स्थान में गया हुआ हूँ। किन्तु ज्योंही मैं जगता हूँ तो ये शरीर भूल जाते हैं। इसी प्रकार जब कोई कृष्णभावना में होता है, तो उसे शरीर के सारे विकार भूल जाते हैं। हम माता के गर्भ से जन्म लेने के बाद निरन्तर शरीर बदलते रहते हैं। किन्तु जब हममें कृष्णचेतना (भक्ति) जागृत होती

है, तो हम इन सारे शरीरों को भूल जाते हैं। तब शारीरिक आवश्यकताएँ गौण हो जाती हैं, क्योंकि आत्मा का कार्य वास्तविक आध्यात्मिक जीवन में लगना है। पूर्ण कृष्णभावना में भक्ति कार्यों से हम समाधि में स्थित होते हैं। *भगवत्यात्मसंश्रये* शब्द परमात्मा रूप भगवान् के द्योतक हैं। *भगवद्गीता* में श्रीकृष्ण कहते हैं—*बीजं मां सर्वभूतानाम्*—मैं समस्त जीवों का बीज रूप हूँ। भक्तियोग द्वारा परमेश्वर की शरण ग्रहण करने से मनुष्य को ब्रह्म की पूरी प्रतीति हो जाती है। कपिल कहते हैं—*मद्गुणश्रुतिमात्रेण*—जो कृष्णभावनाभावित है और भगवान् में स्थित है, वह भगवान् के दिव्य गुणों के श्रवण मात्र से ईश्वर प्रेम से पूरित हो जाता है।

देवहूति को उनके पुत्र कपिलदेव ने पूरी तरह उपदेश दिया था कि किस तरह विष्णु के स्वरूप पर मन को केन्द्रिय किया जाय। भक्तियोग के सम्बन्ध में अपने पुत्र द्वारा दिए गये उपदेशों का अनुसरण करके उन्होंने अपने मन में भगवान के स्वरूप का ध्यान किया। ब्रह्म-साक्षात्कार अर्थात् योग पद्धति अथवा भक्तियोग की यही पूर्णता है। अन्ततः जब मनुष्य परमेश्वर के विचार में पूरी तरह निमग्न हो जाता है और निरन्तर उनका ही ध्यान करता है, वही सर्वोच्च सिद्धि है। भगवद्गीता में पुष्टि हुई है कि इस प्रकार से जो सदैव ध्यानमग्न रहता है, वही उच्च कोटि का योगी है।

ज्ञानयोग, ध्यानयोग अथवा भक्तियोग—दिव्य साक्षात्कार की समस्त विधियों का वास्तविक उद्देश्य भक्ति के बिन्दु तक पहुँचना हैं। यदि कोई केवल परम सत्य या परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है, किन्तु उसमें भक्ति नहीं होती तो सारा श्रम निरर्थक होता है। यह तो अन्न निकाले हुए भूसे को कूटने जैसा है। जब तक मनुष्य परमेश्वर को वास्तविक लक्ष्य नहीं मान लेता तब तक केवल चिन्तन या योगाभ्यास करना व्यर्थ है। 'अष्टांग-योग' पद्धति में सिद्धि की सातवीं अवस्था ध्यान है, जबकि भक्तियोग में वही ध्यान तीसरी अवस्था है। पहली अवस्था है श्रवण और दूसरी कीर्तन, तब ध्यान। अतः भक्ति करने से मनुष्य स्वयमेव पटु ज्ञानी तथा पटु योगी हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ज्ञान तथा योग भक्ति की विभिन्न प्रारम्भिक अवस्थाएँ हैं।

देवहूति सार ग्रहण करने में पटु थीं, उन्होंने अपने हँसमुख पुत्र कपिलदेव द्वारा उपदिष्ट विधि से विष्णु स्वरूप का ध्यान किया। साथ ही वे कपिलदेव का भी चिन्तन कर रही थीं जो श्रीभगवान् हैं, अत: उन्होंने अपनी तपस्या तथा दिव्य साक्षात्कार को पूरा कर लिया।

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ।
न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थित: ॥ २७॥

शब्दार्थ

नित्य—शाश्वत; आरूढ—स्थित; समाधित्वात्—समाधि से; परावृत्त—मुक्त; गुण—प्रकृति के गुणों का; भ्रमा—भ्रम; न सस्मार—उसे स्मरण नहीं आया; तदा—तब; आत्मानम्—अपना शरीर; स्वप्ने—स्वप्न में; दृष्टम्—देखा हुआ; इव—जिस प्रकार; उत्थित:—जागा हुआ।

नित्य समाधि में स्थित होने तथा प्रकृति के गुणों से उत्पन्न भ्रम से मुक्त होने के कारण उन्हें अपना शरीर वैसे ही भूल गया जिस तरह मनुष्य को स्वप्न में अपने विविध शरीर भूल जाते हैं।

तात्पर्य : एक महान् वैष्णव का कहना है कि जिसे अपने शरीर की सुधि नहीं रहती वह संसार से बँधा हुआ नहीं है। जब तक हमें अपने शरीर की सुधि रहती है तब तक यह समझना चाहिए कि हम प्रकृति के तीन गुणों से बद्ध हैं। यह विस्मृति तभी सम्भव है जब हम अपनी इन्द्रियों को भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा दें। बद्ध अवस्था में मनुष्य अपनी इन्द्रियाँ परिवार के सदस्य या समाज अथवा देश के सदस्य रूप में लगाता है। किन्तु जब वह ऐसी भौतिक सदस्यता को भूल करके यह अनुभव करता है कि वह भगवान् का नित्य दास है, तो वही संसार की वास्तविक विस्मृति है।

यह विस्मृति असल में भगवान् की सेवा करने पर ही उत्पन्न होती है। तब भक्त अपने परिवार, समाज, देश, मानवता इत्यादि के लिए इन्द्रियतृप्ति हेतु कोई कार्य नहीं करता। वह केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के लिए कार्य करता है। यही पूर्ण कृष्णचेतना (भक्ति) है।

भक्त दिव्य सुख में निमग्न रहता है, अत: वह भौतिक क्लेशों का कोई अनुभव नहीं करता। यह दिव्य सुख नित्य आनन्द कहलाता है। भक्तों के अनुसार, भगवान् का निरन्तर स्मरण ही समाधि है। यदि कोई निरन्तर समाधि में रहता है, तो उस पर प्रकृति के गुणों का

आक्रमण नहीं होता, यहाँ तक कि वे इसे छू तक नहीं पाते। ज्योंही कोई तीनों गुणों के कल्मष से मुक्त हो जाता है उसे एक शरीर से दूसरे में अन्तरण करने के लिए जन्म नहीं लेना पड़ता।

तद्देहः परतः पोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात् ।
बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तत्-देहः—उनका शरीर; परतः—अन्यों से (कर्दम द्वारा उत्पन्न युवतियों से); पोषः—पाला गया; अपि—यद्यपि; अकृशः—दुबला नहीं; च—तथा; आधि—चिन्ता; असम्भवात्—उत्पन्न न होने से; बभौ—चमका; मलैः—धूल से; अवच्छन्नः—ढका हुआ; स-धूमः—धुएँ से घिरा; इव—सदृश; पावकः—अग्नि।

उसके शरीर की देखभाल उसके पति कर्दम द्वारा उत्पन्न अप्सराओं द्वारा की जा रही थी और चूँकि उस समय उसे किसी प्रकार की मानसकि चिन्ता न थी, अतः उसका शरीर दुर्बल नहीं हुआ। वह धुएँ से घिरी हुई अग्नि के समान प्रतीत हो रही थी।

तात्पर्य : चूँकि वह समाधि में दिव्य आनन्द का अनुभव करती थी, अतः भगवान् का विचार सदैव उसके मन में स्थिर था। वह दुबली नहीं हुई, क्योंकि उसकी देखभाल स्वर्ग की उन सुन्दरियों द्वारा की जा रही थी जिन्हें कर्दम मुनि ने उत्पन्न किया था। आयुर्वेद के अनुसार यदि कोई चिन्तामुक्त रहे तो वह मोटा हो जाता है। देवहूति कृष्णभक्ति में स्थित होने के कारण सारी चिन्ताओं से मुक्त थीं, अतः उनका शरीर दुबला नहीं हुआ। संन्यास आश्रम में किसी दास या दासी से सेवा कराने का विधान नहीं है, किन्तु देवहूति की सेवा स्वर्ग-सुन्दरियाँ कर रही थीं। यह आध्यात्मिक जीवन विचारधारा के प्रतिकूल लग सकता है, किन्तु जिस प्रकार धुएँ से घिरी होने पर भी अग्नि सुन्दर लगती है, उसी प्रकार देवहूति अत्यन्त शुद्ध दिख रही थीं, यद्यपि ऐसा लग रहा था कि वह विलासमय जीवन बिता रही है।

स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम् ।
दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

स्व-अङ्गम्—अपना शरीर; तपः—तपस्या; योग—योगाभ्यास; मयम्—पूर्णतया संलग्न; मुक्त—खुले हुए; केशम्—बाल; गत—अस्तव्यस्त; अम्बरम्—वस्त्र; दैव—भगवान् द्वारा; गुप्तम्—रक्षित; न—नहीं; बुबुधे—उसे पता था; वासुदेव—भगवान् में; प्रविष्ट—तल्लीन; धीः—विचार।

भगवान् के विचार में सदैव तल्लीन रहने के कारण उसे इसकी सुधि भी न रही कि उसके बाल बिखर गये हैं और उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *दैवगुप्तम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है ''भगवान् द्वारा रक्षित।'' एक बार भगवान् की शरण ग्रहण कर लेने पर वे ही भक्त के शरीर का पालन करते हैं और इसकी रक्षा के लिए किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती। *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कंध के द्वितीय अध्याय में कहा गया है कि पूर्ण शरणागत व्यक्ति को अपने शरीर के पालन की परवाह नहीं रहती। परमेश्वर असंख्य प्रकार के जीवों का पालन करते हैं, अत: जो उनकी सेवा में संलग्न है, वह अरक्षित नहीं रह सकता। अत: स्वाभाविक है कि देवहूति को अपने शरीर की सुध-बुध न थी, उसकी रक्षा तो परम पुरुष कर रहे थे।

एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरत: परम् ।
आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सा—वह (देवहूति); कपिल—कपिल द्वारा; उक्तेन—बताये; मार्गेण—मार्ग से; अचिरत:—शीघ्र; परम्—परम; आत्मानम्—परमात्मा को; ब्रह्म—ब्रह्म; निर्वाणम्—जीवन का अन्त; भगवन्तम्—भगवान् को; अवाप—प्राप्त किया; ह—निश्चय ही।

हे विदुर, कपिल द्वारा बताये गये नियमों का पालन करते हुए देवहूति शीघ्र ही भव-बन्धन से मुक्त हो गई और बिना कठिनाई के परमात्मास्वरूप भगवान् को प्राप्त हुई।

तात्पर्य : इस प्रसंग में देवहूति की उपलब्धि को बताने वाले तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं—*आत्मानम्, ब्रह्म-निर्वाणम् तथा भगवन्तम्*—ये परम सत्य की खोज की क्रमिक विधि को बताते हैं, जिसे *भगवन्तम्* कहा गया है। भगवान् विविध वैकुण्ठलोकों में वास करते हैं। *निर्वाण* का अर्थ है संसार के क्लेशों का शमन। जब कोई वैकुण्ठ को जाता है, तो वह सारे क्लेशों से स्वत: मुक्त हो जाता है। यही *ब्रह्म-निर्वाण* है। वैदिक शास्त्रों के अनुसार *निर्वाण* का अर्थ है भौतिक जीवन का अन्त। *आत्मानम्* का अर्थ है हृदय के भीतर परमात्मा का साक्षात्कार। अन्तत: परमसिद्धि तो भगवान् का साक्षात्कार है। यह समझ लेना चाहिए कि देवहूति उस लोक में प्रविष्ट हुई जिसे कपिल 'वैकुण्ठ' कहते हैं। वैकुण्ठलोकों की संख्या अनन्त है जिनमें

विष्णु के अंशों का प्राधान्य रहता है। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* से ज्ञात होता है—*अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्*। *अनन्त* का अर्थ है 'असंख्य'। भगवान् के दिव्य स्वरूप के असंख्य विस्तार (अंश) होते हैं और अपनी चार भुजाओं में विभिन्न चिह्नों को धारण करने के कारण वे नारायण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, वासुदेव आदि कहलाते हैं। 'कपिल वैकुण्ठ' नाम से भी एक वैकुण्ठ है जहाँ देवहूति कपिल से मिलने और अपने दिव्य पुत्र की संगति का आनन्द लेने के लिए भेज दी गईं।

तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; वीर—हे वीर विदुर; आसीत्—था; पुण्य-तमम्—सर्वाधिक पवित्र; क्षेत्रम्—स्थान; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों में; विश्रुतम्—विख्यात; नाम्ना—नाम से; सिद्ध-पदम्—सिद्ध पद; यत्र—जहाँ; सा—उसने (देवहूति ने); संसिद्धिम्—सिद्धि; उपेयुषी—प्राप्त की।

हे विदुर, जिस स्थान पर देवहूति ने सिद्धि प्राप्त की वह स्थान अत्यन्त पवित्र माना जाता है। यह तीनों लोकों में सिद्धपद के नाम से विख्यात है।

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ।
स्त्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—देवहूति का; तत्—वह; योग—योग द्वारा; विधुत—परित्यक्त; मार्त्यम्—भौतिक तत्त्व; मर्त्यम्—समस्त नदियों में; अभूत्—हो गया; सरित्—नदी; स्त्रोतसाम्—समस्त नदियों में; प्रवरा—अग्रणी; सौम्य—हे भद्र विदुर; सिद्धि-दा—सिद्धि देने वाली; सिद्ध—सिद्धि के इच्छुक पुरुषों द्वारा; सेविता—सेवित।

हे विदुर, उनके शरीर के तत्त्व पिघलकर जल बन गये और अब समस्त नदियों में सबसे पवित्र नदी के रूप में बह रहे हैं। जो भी इस नदी में स्नान करता है उसे सिद्धि प्राप्त होती है, अतः सिद्धि के इच्छुक लोग उसमें स्नान करते हैं।

कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् ।
मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कपिलः—भगवान् कपिल; अपि—निश्चय ही; महा-योगी—ऋषि; भगवान्—भगवान्; पितुः—अपने पिता के; आश्रमात्—कुटी में; मातरम्—अपनी माता से; समनुज्ञाप्य—आज्ञा लेकर; प्राक्-उदीचीम्—उत्तर-पूर्व, ईशानकोण; दिशम्—दिशा को; ययौ—चला गया।

हे विदुर, महामुनि भगवान् कपिल अपनी माता की आज्ञा से अपने पिता का आश्रम छोड़कर उत्तरपूर्व दिशा की ओर चले गये।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।
स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

सिद्ध—सिद्धों द्वारा; चारण—चारणों द्वारा; गन्धर्वैः—गन्धर्वों द्वारा; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; च—तथा; अप्सरः-गणैः—अप्सराओं (स्वर्ग लोक की सुन्दरियाँ) द्वारा; स्तूयमानः—स्तुति किये गये; समुद्रेण—समुद्र द्वारा; दत्त—दिया गया; अर्हण—पूजन; निकेतनः—रहने का स्थान।

जब वे उत्तर दिशा की ओर जा रहे थे तो चारणों, गन्धर्वों, मुनियों तथा अप्सराओं ने उनकी स्तुति की और सब प्रकार से उनका सम्मान किया। समुद्र ने उनका पूजन किया और रहने के लिए स्थान दिया।

तात्पर्य : कहा जाता है कि कपिल मुनि पहले हिमालय की ओर गये और वहाँ गंगा के उद्गम की खोज की। फिर वे गंगा के मुहाने पर समुद्र में आये जिसे आजकल बंगाल की खाड़ी कहते हैं। सागर ने उन्हें रहने के लिए स्थान दिया जिसे आज भी गंगा-सागर कहते हैं जहाँ गंगा नदी समुद्र से मिलती है। यह स्थान गंगा-सागर तीर्थ कहलाता है और आज भी लोग वहाँ जाकर सांख्य दर्शन के संस्थापक कपिल को नमस्कार करते हैं। दुर्भाग्वश किसी एक पाखंडी ने इस सांख्य प्रणाली की मनमानी व्याख्या की और उसका भी नाम कपिल है, किन्तु वह प्रणाली *श्रीमद्भागवत* में वर्णित कपिल के सांख्य से मेल नहीं खाती।

आस्ते योगं समास्थाय साङ्ख्याचार्यैरभिष्टुतः ।
त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

आस्ते—रह रहा है; योगम्—योग; समास्थाय—अभ्यास करके; साङ्ख्य—सांख्य दर्शन के; आचार्यैः—महान् शिक्षकों द्वारा; अभिष्टुतः—पूजित; त्रयाणाम्—तीन; अपि—भी; लोकानाम्—लोकों के; उपशान्त्यै—उद्धार के लिए; समाहितः—समाधि में स्थित।

आज भी कपिल मुनि तीनों लोकों के बद्धजीवों के उद्धार हेतु वहाँ समाधिस्थ हैं

और सांख्य दर्शन के समस्त आचार्य उनकी पूजा करते हैं।

एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ।
कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; निगदितम्—कहा गया; तात—हे विदुर; यत्—जो; पृष्टः—पूछे जाने पर; अहम्—मैंने; तव—तुम्हारे द्वारा; अनघ—हे पापरहित विदुर; कपिलस्य—कपिल की; च—तथा; संवादः—वार्ता; देवहूत्याः—देवहूति की; च—तथा; पावनः—शुद्ध।

हे पुत्र, तुम्हारे पूछे जाने पर मैंने तुम्हें बताया। हे पापरहित, कपिलदेव तथा उनकी माता के वृत्तान्त तथा उनके कार्यकलाप समस्त वार्ताओं में शुद्धतम् हैं।

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते
कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ।
भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावु
उपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; इदम्—इसे; अनुशृणोति—सुनता है; यः—जो भी; अभिधत्ते—व्याख्या करता है; कपिल-मुनेः—कपिल मुनि का; मतम्—उपदेश; आत्म-योग—भगवान् के ध्यान पर आधारित; गुह्यम्—गुप्त, गूढ़; भगवति—भगवान् पर; कृत-धीः—स्थिर मन से; सुपर्ण-केतौ—गरुड़ की ध्वजा वाले; उपलभते—प्राप्त करता है; भगवत्—भगवान् के; पद-अरविन्दम्—चरणकमल।

कपिलदेव तथा उनकी माता के व्यवहारों का विवरण अत्यन्त गोपनीय है और जो भी इस वृत्तान्त को सुनता या पढ़ता है, वह गरुड़ध्वज भगवान् का भक्त बन जाता है और बाद में उनकी दिव्य प्रेमा-भक्ति में प्रवृत्त होने के लिए भगवद्धाम में प्रवेश करता है।

तात्पर्य : कपिल तथा उनकी माता देवहूति का यह वृत्तान्त इतना पूर्ण तथा दिव्य है कि यदि कोई इसे केवल सुनता या पढ़ता है, तो उसे जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि वह भगवान् के चरणकमल की सेवा में लग जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि देवहूति ने मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की जिन्होंने भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके कपिल के उपदेशों का सुचारु रूप से पालन किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत ''कपिल के कार्यकलाप'' नामक

तैंतीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।